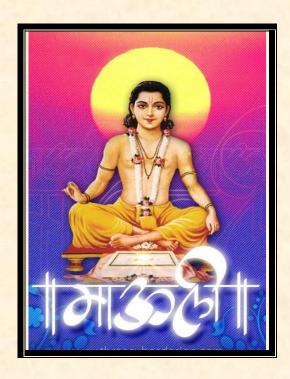
॥ श्रीहरि ॥ ॥ श्री भावार्थदीपिका ॥ ॥ अध्याय पहिला ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)



हेचि आम्हां करणे काम । बीज वाढवावे नाम ॥

संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

॥ अध्याय पहिला ॥ ॥ अर्जुनविषादयोगः॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$>

ॐ नमो जी आद्या । वेद प्रतिपाद्या । जय जय स्वसंवेद्या । आत्मरूपा ॥ १ ॥ देवा तूंचि गणेशु । सकलार्थमतिप्रकाशु । म्हणे निवृत्तिदासु । अवधारिजो जी ॥ २ ॥ हें शब्दब्रह्म अशेष । तेचि मूर्ति सुवेष । जेथ वर्णवपु निर्दोष । मिरवत असे ॥ ३ ॥ स्मृति तेचि अवयव । देखा आंगीक भाव । तेथ लावण्याची ठेव । अर्थशोभा ॥ ४ ॥ अष्टादश पुराणें । तींचि मणिभूषणें । पदपद्धति खेवणें । प्रमेयरत्नांचीं ॥ ५ ॥ पदबंध नागर । तेंचि रंगाथिले अंबर । जेथ साहित्य वाणें सपूर । उजाळाचें ॥ ६ ॥ देखा काव्य नाटका । जे निर्धारितां सकौतुका । त्याचि रुणझुणती क्षुद्रघंटिका । अर्थध्विन ॥ ७ ॥ नाना प्रमेयांची परी । निपुणपणें पाहतां कुसरी । दिसती उचित पदें माझारीं । रत्नें भलीं ॥ ८ ॥ तेथ व्यासादिकांच्या मतीं । तेचि मेखळा मिरवती । चोखाळपणें झळकती । पल्लवसडका ॥ ९ ॥ देखा षड्दर्शनें म्हणिपती । तेची भुजांची आकृति । म्हणौनि विसंवादे धरिती । आयुधें हातीं ॥ १० ॥

तरी तर्कु तोचि फरशु । नीतिभेदु अंकुशु । वेदांतु तो महारसु । मोदकु मिरवे ॥ ११ ॥ एके हातीं दंतु । जो स्वभावता खंडितु । तो बौद्धमतसंकेतु । वार्तिकांचा ॥ १२ ॥ मग सहजें सत्कारवादु । तो पद्मकरु वरदु । धर्मप्रतिष्ठा तो सिद्धु । अभयहस्तु ॥ १३ ॥ देखा विवेकवंतु सुविमळु । तोचि शुंडादंडु सरळु । जेथ परमानंदु केवळु । महासुखाचा ॥ १४ ॥ तरी संवादु तोचि दशनु । जो समता शुभ्रवर्णु । देवो उन्मेषसूक्ष्मेक्षणु । विघ्नराजु ॥ १५ ॥ मज अवगमलिया दोनी । मिमांसा श्रवणस्थानीं । बोधमदामृत मुनी । अली सेविती ॥ १६ ॥ प्रमेयप्रवाल सुप्रभ । द्वैताद्वैत तेचि निकुंभ । सरिसेपणें एकवटत इभ- । मस्तकावरी ॥ १७ ॥ उपरि दशोपनिषदें । जियें उदारें ज्ञानमकरंदे । तियें कुसुमें मुगुटीं सुगंधें । शोभती भलीं ॥ १८ ॥ अकार चरण युगल । उकार उदर विशाल । मकार महामंडल । मस्तकाकारें ॥ १९ ॥ हे तीन्ही एकवटले । तथ शब्दब्रह्म कवळलें । तें मियां श्रीगुरुकृपा निमलें । आदिबीज ॥ २० ॥ आतां अभिनव वाग्विलासिनी । ते चातुर्यार्थकलाकामिनी । ते शारदा विश्वमोहिनी । निमली मियां ॥ २१ ॥ मज हृदयीं सद्गुरु । जेणें तारिलों हा संसारपूरु ।

4\$><\$><\$><\$><\$><\$>

म्हणौनि विशेषें अत्यादरु । विवेकावरी ॥ २२ ॥ जैसें डोळ्यां अंजन भेटे । ते वेळीं दृष्टीसी फांटा फुटे । मग वास पाहिजे तेथ । प्रगटे महानिधी ॥ २३ ॥ कां चिंतामणी जालियां हातीं । सदा विजयवृत्ति मनोरथीं । तैसा मी पूर्णकाम श्रीनिवृत्ति । ज्ञानदेवो म्हणे ॥ २४ ॥ म्हणोनि जाणतेनें गुरु भजिजे । तेणें कृतकार्य होईजे । जैसें मुळसिंचनें सहजें । शाखापल्लव संतोषती ॥ २५ ॥ कां तीर्थें जियें त्रिभुवनीं । तियें घडती समुद्रावगाहनीं । ना तरी अमृतरसास्वादनीं । रस सकळ ॥ २६ ॥ तैसा पुढतपुढती तोचि । मियां अभिवंदिला श्रीगुरुचि । जो अभिलषित मनोरुचि । पुरविता तो ॥ २७ ॥ आतां अवधारा कथा गहन । जे सकळां कौतुकां जन्मस्थान । कीं अभिनव उद्यान । विवेकतरूचें ॥ २८ ॥ ना तरी सर्व सुखाचि आदि । जे प्रमेयमहानिधि । नाना नवरससुधाब्धि । परिपुर्ण हे ॥ २९ ॥ कीं परमधाम प्रकट । सर्व विद्यांचे मूळपीठ । शास्त्रजाता वसौट । अशेषांचें ॥ ३० ॥ ना तरी सकळ धर्मांचें माहेर । सज्जनांचे जिव्हार । लावण्यरत्न भांडार । शारदेचें ॥ ३१ ॥ नाना कथारूपें भारती । प्रकटली असे त्रिजगतीं । आविष्करोनि महामतीं । व्यासाचिये ॥ ३२ ॥ म्हणौनि हा काव्यांरावो । ग्रंथ गुरुवतीचा ठावो । एथूनि रसां झाला आवो । रसाळपणाचा ॥ ३३ ॥

तेवींचि आइका आणिक एक । एथूनि शब्दश्री सच्छास्त्रिक । आणि महाबोधीं कोंवळीक । दुणावली ॥ ३४ ॥ एथ चातुर्य शहाणें झालें । प्रमेय रुचीस आलें । आणि सौभाग्य पोखलें । सुखाचें एथ ॥ ३५॥ माधुर्यीं मधुरता । श्रुंगारीं सुरेखता । रूढपण उचितां । दिसे भलें ॥ ३६ ॥ एथ कळाविदपण कळा । पुण्यासि प्रतापु आगळा । म्हणौनि जनमेजयाचे अवलीळा । दोष हरले ॥ ३७ ॥ आणि पाहतां नावेक । रंगीं सुरंगतेची आगळीक । गुणां सगुणपणाचें बिक । बहुवस एथ ॥ ३८ ॥ भानुचेनि तेजें धवळलें । जैसे त्रैलोक्य दिसे उजळिलें । तैसें व्यासमित कवळिलें । मिरवे विश्व ॥ ३९ ॥ कां सुक्षेत्रीं बीज घातलें । तें आपुलियापरी विस्तारलें । तैसें भारतीं सुरवाडलें । अर्थजात ॥ ४० ॥ ना तरी नगरांतरीं वसिजे । तरी नागराचि होईजे । तैसें व्यासोक्तितेजें । धवळत सकळ ॥ ४१ ॥ कीं प्रथमवयसाकाळीं । लावण्याची नव्हाळी । प्रगटे जैसी आगळी । अंगनाअंगीं ॥ ४२ ॥ ना तरी उद्यानीं माधवी घडे । तेथ वनशोभेची खाणी उघडे । आदिलापासौनि अपाडें । जियापरी ॥ ४३ ॥ नानाघनीभूत सुवर्ण । जैसें न्याहाळितां साधारण । मग अलंकारीं बरवेपण । निवाडु दावी ॥ ४४ ॥ तैसें व्यासोक्ति अळंकारिलें । आवडे तें बरवेपण पातलें ।

(2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (2) >

तें जाणोनि काय आश्रयिलें । इतिहासीं ॥ ४५ ॥ नाना पुरतिये प्रतिष्ठेलागीं । सानीव धरूनि आंगीं । पुराणें आख्यानरूपें जगीं । भारता आलीं ॥ ४६ ॥ म्हणौनि महाभारतीं नाहीं । तें नोहेचि लोकीं तिहीं । येणें कारणें म्हणिपे पाहीं । व्यासोच्छिष्ट जगत्रय ॥ ४७ ॥ ऐसी जगीं सुरस कथा । जें जन्मभूमि परमार्था । मुनि सांगे नृपनाथा । जनमेजया ॥ ४८ ॥ जें अद्वितीय उत्तम । पवित्रैक निरुपम । परम मंगलधाम । अवधारिजो ॥ ४९ ॥ आतां भारतकमळपरागु । गीताख्यु प्रसंगु । जो संवादला श्रीरंगु । अर्जुनेंसीं ॥ ५० ॥ ना तरी शदब्रह्माब्धि । मथियला व्यासबुद्धि । निवडिलें निरवधि । नवनीत हें ॥ ५१ ॥ मग ज्ञानाग्निसंपर्के । कडसिलेंनि विवेके । पद आलें परिपाकें । आमोदासी ॥ ५२ ॥ जें अपेक्षिजे विरक्तीं । सदा अनुभविजे संतीं । सोहंभावें पारंगतीं । रिमजे जेथ ॥ ५३ ॥ जें आकर्णिजें भक्तीं । जें आदिवंद्य त्रिजगतीं । तें भीष्मपर्वीं संगती । म्हणितली कथा ॥ ५४ ॥ जें भगवद्गीता म्हणिजे । जें ब्रह्मेशांनीं प्रशंसिजे । जें सनकादिकीं सेविजे । आदरेंसीं ॥ ५५ ॥ जैसें शारदीचिये चंद्रकळे । माजि अमृतकण कोंवळे । ते वेंचिती मनें मवाळें । चकोरतलगें ॥ ५६ ॥

तियापरी श्रोतां । अनुभवावी हे कथा । अतिहळुवारपण चित्ता । आणूनियां ॥ ५७ ॥ हें शब्देंबीण संवादिजे । इंद्रियां नेणतां भोगिजे । बोलाआधि झोंबिजे । प्रमेयासी ॥ ५८ ॥ जैसे भ्रमर परागु नेती । परी कमळदळें नेणती । तैसी परी आहे सेविती । ग्रंथीं इये ॥ ५९ ॥ कां आपुला ठावो न सांडितां । आलिंगिजे चंद्रु प्रकटतां । हा अनुरागु भोगितां । कुमुदिनी जाणे ॥ ६० ॥ ऐसेनि गंभीरपणें । स्थिरावलोनि अंतःकरणें । आथिला तोचि जाणें। मानूं इये॥ ६१॥ अहो अर्जुनाचिये पांती । जे परिसणया योग्य होती । तिहीं कृपा करूनि संतीं । अवधान द्यावें ॥ ६२ ॥ हें सलगी म्यां म्हणितलें । चरणां लागोनि विनविलें । प्रभू सखोल हृदय आपुलें । म्हणौनियां ॥ ६३ ॥ जैसा स्वभावो मायबापांचा । अपत्य बोले जरी बोबडी वाचा । तरी अधिकचि तयाचा । संतोष आथी ॥ ६४ ॥ तैसा तुम्हीं मी अंगिकारिला । सज्जनीं आपुला म्हणितला । तरी उणें सहजें उपसाहला । प्रार्थं कायी ॥ ६५ ॥ परी अपराधु तो आणिक आहे । जे मी गीतार्थु कवळुं पाहें । तें अवधारा विनवूं लाहें । म्हणौनियां ॥ ६६ ॥ हें अनावर न विचारितां । वायांचि धिंवसा उपनला चित्ता । येर्हनवीं भानुतेजीं काय खद्योता । शोभा आथी ॥ ६७ ॥ कीं टिटिभू चांचुवरी । माप सूये सागरीं ।

BOOK OF THE PROPERTY OF THE PR

मी नेणतु त्यापरी । प्रवर्ते येथ ॥ ६८ ॥ आइका आकाश गिंवसावें । तरी आणीक त्याहूनि थोर होआवें । म्हणौनि अपाडू हें आघवें । निर्धारितां ॥ ६९ ॥ या गीतार्थाची थोरी । स्वयें शंभू विवरी । जेथ भवानी प्रश्नु करी । चमत्कारौनि ॥ ७० ॥ तेथ हरु म्हणे नेणिजे । देवी जैसें कां स्वरूप तुझें । तैसें हें नित्य नूतन देखिजे । गीतातत्व ॥ ७१ ॥ हा वेदार्थ सागरु । जया निद्रिताचा घोरु । तो स्वयें सर्वेश्वरु । प्रत्यक्ष अनुवादला ॥ ७२ ॥ ऐसे जें अगाध । जेथ वेडावती वेद । तेथ अल्प मी मितमंद । काई होये ॥ ७३ ॥ हें अपार कैसेनि कवळावें । महातेज कवणें धवळावें । गगन मुठीं सुवावें । मशकें केवीं ॥ ७४ ॥ परी एथ असे एकु आधारु । तेणेंचि बोले मी सधरु । जे सानुकूळ श्रीगुरु । ज्ञानदेवो म्हणे ॥ ७५ ॥ येर्हनवीं तरी मी मुर्खु । जरी जाहला अविवेकु । तर्हीन संतकृपादीपकु । सोज्वळु असे ॥ ७६ ॥ लोहाचें कनक होये । हें सामर्थ्य परिसींच आहे । कीं मृतही जीवित लाहे । अमृतसिद्धि ॥ ७७ ॥ जरी प्रकटे सिद्धसरस्वती । तरी मुकयाहि आथी भारती । एथ वस्तुसामर्थ्यशक्ति । नवल कयी ॥ ७८ ॥ जयातें कामधेनु माये । तयासी अप्राप्य कांहीं आहे । म्हणौनि मी प्रवर्तों लाहें । ग्रंथीं इये ॥ ७९ ॥

\$\rightarrow\frac{1}{2} \rightarrow\frac{1}{2} \rightarrow\frac{1

तरी न्यून ते पुरतें । अधिक तें सरतें ।
करूनि घेयावें हें तुमतें । विनवित असे ॥ ८० ॥
आतां देईजो अवधान । तुम्हीं बोलविल्या मी बोलेन ।
जैसे चेष्टे सूत्राधीन । दारुयंत्र ॥ ८१ ॥
तैसा मी अनुग्रहीतु । साधूंचा निरूपितु ।
ते आपुलियापरी अलंकारितु । भलतयापरी ॥ ८२ ॥
तंव श्रीगुरु म्हणती राहीं । हे तुज बोलावें नलगे कांहीं ।
आतां ग्रंथा चित्त देईं । झडकरी वेगां ॥ ८३ ॥
या बोला निवृत्तिदासु । पावूनि परम उल्हासु ।
म्हणे परियसा मना अवकाशु । देऊनियां ॥ ८४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

तरी पुत्रस्नेहं मोहितु । धृतराष्ट्र असे पुसतु । म्हणे संजया सांगे मातु । कुरुक्षेत्रींची ॥ ८५ ॥ जें धर्मालय म्हणिजे । तेथ पांडव आणि माझे । गेले असती व्याजें । जुंझाचेनि ॥ ८६ ॥ तरी तेचि येतुला अवसरीं । काय किजत असे येरयेरीं । ते झडकरी कथन करी । मजप्रती ॥ ८७ ॥

> संजय उवाच । दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा । आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

तिये वेळीं तो संजय बोले । म्हणे पांडव सैन्य उचललें । जैसें महाप्रळयीं पसरलें । कृतांतमुख ॥ ८८ ॥ तैसें तें घनदाट । उठावलें एकवाट । जैसें उसळलें काळकूट । धरी कवण ॥ ८९ ॥ नातरी वडवानळु सादुकला । प्रळयवातें पोखला । सागरु शोषूनि उधवला । अंबरासी ॥ ९० ॥ तैसें दळ दुर्धर । नानाव्यूहीं परीकर । अवगमलें भयासुर । तिये काळीं ॥ ९१ ॥ तें देखोनियां दुर्योधनें । अव्हेरिलें कवणें मानें । जैसे न गणिजे पंचाननें । गजघटांतें ॥ ९२ ॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्। व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

मग द्रोणापासीं आला । तयांतें म्हणे हा देखिला । कैसा दळभारू उचलला । पांडवांचा ॥ ९३ ॥ गिरिदुर्ग जैसे चालते । तैसे विविध व्यूह सभंवते । रचिले आथी बुद्धिमंतें । द्रुपदकुमरें ॥ ९४ ॥ जो हा तुम्हीं शिक्षापिला । विद्या देऊनि कुरुठा केला । तेणें हा सैन्यसिंहु पाखरिला । देख देख ॥ ९५ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि । युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥ आणिकही असाधारण । जे शस्त्रास्त्रीं प्रवीण । क्षात्रधर्मीं निपुण । वीर आहाती ॥ ९६ ॥ जे बळें प्रौढी पौरुषें । भीमार्जुनांसारिखे । ते सांगेन कौतुकें । प्रसंगेची ॥ ९७ ॥ एथ युयुधानु सुभटु । आला असे विराटु । महारथी श्रेष्ठु । द्रुपद वीरु ॥ ९८ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् । पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् । सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

चेकितान धृष्टकेतु । काशिराज वीर विक्रांतु ।
उत्तमौजा नृपनाथु । शैब्य देख ॥ ९९ ॥
हा कुंतिभोज पाहें । एथ युधामन्यु आला आहे ।
आणि पुरुजितादि राय हे । सकळ देख ॥ १०० ॥
हा सुभद्राहृदयनंदनु । जो अपरु नवार्जुनु ।
तो अभिमन्यु म्हणे दुर्योधनु । देखें द्रोणा ॥ १०९ ॥
आणीकही द्रौपदीकुमर । हे सकळही महारथी वीर ।
मिती नेणिजे परी अपार । मीनले असती ॥ १०२ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम । नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्त्रवीमि ते ॥ ७ ॥ भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

आतां आमुच्या दळीं नायक । जे रूढवीर सैनिक । ते प्रसंगें आइक । सांगिजती ॥ १०३ ॥ उद्देशें एक दोनी । जायिजती बोलोनी । तुम्ही आदिकरूनी । मुख्य जे जें ॥ १०४ ॥ हा भीष्म गंगानंदनु । जो प्रतापतेजस्वी भानु । रिपुगजपंचाननु । कर्णवीरु ॥ १०५ ॥ या एकेकाचेनी मनोव्यापारें । हें विश्व होय संहरे । हा कृपाचार्यु न पुरे । एकलाचि ॥ १०६ ॥ एथ विकर्ण वीरु आहे । हा अश्वत्थामा पैल पाहें । याचा आडदरु सदां वाहे । कृतांतु मनीं ॥ १०७ ॥ अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः । नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥ समितिंजयो सौमदत्ती । ऐसे आणीकही बहुत आहाती । जयांचिया बळा मिती । धाताही नेणें ॥ १०८ ॥ जे शास्त्रविद्यापारंगत । मंत्रावतार मूर्त । हो कां जें अस्त्रजात । एथूनि रूढ ॥ १०९ ॥ हे अप्रतिमल्ल जगीं । पुरता प्रतापु अंगीं । परी सर्व प्राणें मजलागीं । आरायिले असती ॥ ११० ॥ पतिव्रतेचें हृदय जैसें । पतिवांचूनि न स्पर्शे । मी सर्वस्व या तैसें । सुभटांसी ॥ १११ ॥ आमुचिया काजाचेनि पाडें। देखती आपुलें जीवित थोकडें। ऐसे निरवधि चोखडें । स्वामिभक्त ॥ ११२ ॥ झुंजती कुळकणी जाणती । कळे किर्तीसी जिती ।

<</p>

<</p>

</p

हे बहु असो क्षात्रनीति । एथोनियां ॥ ११३ ॥ ऐसे सर्वांपरि पुरते । वीर दळीं आमुते । आतं काय गणूं यांतें । अपार हे ॥ ११४ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् । पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १०॥

वरी क्षत्रियांमाजी श्रेष्ठु । जो जगजेठी जगीं सुभटु ।
तया दळवैपणाचा पाटु । भीष्मासि पैं ॥ ११५ ॥
आतां याचेनि बळें गवसलें । हे दुग जैसे पन्नासिलें ।
येणें पाडें थेकुलें । लोकत्रय ॥ ११६ ॥
आधींच समुद्र पाहीं । तेथ दुवाडपण कवणा नाहीं ।
मग वडवानळु तैसे याही । विरजा जैसा ॥ ११७ ॥
ना तरीं प्रळयवन्ही महावातु । या दोघां जैसा सांधातु ।
तैसा हा गंगासुतु । सेनापित ॥ ११८ ॥
आतां येणेंसि कवण भिडे । हें पांडवसैन्य कीर थोकडें ।
परि वरिचलेनि पाडें । दिसत असे ॥ ११९ ॥
वरी भीमसेनु बेथु । तो जाहला असे सेनानाथु ।
ऐसें बोलोनियां मातु । सांडिली तेणें ॥ १२० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः । भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

मग पुनरिप काय बोले । सकळ सैनिकांतें म्हणितलें । आतां दळभार आपुलाले । सरसे करा ॥ १२१ ॥ जया जिया अक्षौहिणी । तेणें तिया आरणी । वरगण कवणकवणी । महारथीया ॥ १२२ ॥ तेणें तिया आवरिजे । भीष्मातळीं राहिजे । द्रोणातें म्हणे पाहिजे । तुम्ही सकळ ॥ १२३ ॥ हाचि एकु रक्षावा । मी तैसा हा देखावा । येणें दळभारु आघवा । साचु आमुचा ॥ १२४ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः । सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

या राजयाचिया बोला । सेनापित संतोषला ।

मग तेणें केला । सिंहनादु ॥ १२५ ॥

तो गाजत असे अद्भुनतु । दोन्ही सैन्याआंतु ।

प्रतिध्विन न समातु । उपजत असे ॥ १२६ ॥

तयाचि तुलगासवें । वीरवृत्तीचेिन थावें ।

दिव्य शंख भीष्मदेवें । आस्फुरिला ॥ १२७ ॥

ते दोन्ही नाद मीनले । तेथ त्रैलोक्य बिधरीभूत जाहलें ।

जैसें आकाश कां पिडलें । तुटोनिया ॥ १२८ ॥

घडघडीत अंबर । उचंबळत सागर ।

क्षोभलें चराचर । कांपत असे ॥ १२९ ॥

तेणें महाघोषगजरें । दुमदुमिताती गिरिकंदरें ।

तव दळामाजीं रणतुरें । आस्फुरिलीं ॥ १३० ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः । सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

उदंड सैंघ वाजतें । भयानखें खाखातें ।

महाप्रळयो जेथें । धाकडांसी ॥ १३१ ॥
भेरी निशाण मांदळ । शंख काहळ भोंगळ ।
आणि भयासुर रणकोल्हाळ । सुभटांचे ॥ १३२ ॥
आवेशें भुजा त्राहाटिती । विसणेले हांका देती ।
जेथ महामद भद्रजाती । आवरती ना ॥ १३३ ॥
तेथ भेडांची कवण मातु । कांचया केर फिटतु ।
जेणें दचकला कृतांतु । आंग नेघे ॥ १३४ ॥
एकां उभयाचि प्राण गेले । चांगांचे दांत बैसले ।
बिरुदाचे दादुले । हिंवताती ॥ १३५ ॥
ऐसा अद्भुत तूरबंबाळु । ऐकोनि ब्रह्मा व्याकुळु ।
देव म्हणती प्रळयकाळु । वोढवला आजी ॥ १३६ ॥

ततः श्वेतैहयैर्युक्ते महित स्यन्दने स्थितौ । माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥ पाञ्चजन्यं हषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः । पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥ अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

ऐसी स्वर्गीं मातु । देखोनि तो आकांतु । तव पांडवदळाआंतु । वर्तलें कायी ॥ १३७ ॥ हो कां निजसार विजयाचें । कीं तें भांडार महातेजाचें । जेथ गरुडाचिये जावळियेचे । कांतले चाहीं ॥ १३८ ॥

कीं पाखांचा मेरु जैसा । रहंवरु मिरवतसे तैसा । तेजें कोंदाटलिया दिशा । जयाचेनि ॥ १३९ ॥ जेथ अश्ववाहकु आपण । वैकुंठींचा राणा जाण । तया रथाचे गुण । काय वर्णुं ॥ १४० ॥ ध्वजस्तंभावरी वानरु । तो मुर्तिमंत शंकरु । सारथी शारङ्गधरु । अर्जुनेसीं ॥ १४१ ॥ देखा नवल तया प्रभूचें । अद्भु॥त प्रेम भक्ताचें । जें सारथ्यपण पार्थाचें । करितु असे ॥ १४२ ॥ पाइकु पाठींसी घातला । आपण पुढां राहिला । तेणें पाञ्चजन्यु आस्फुरिला । अवलीळाचि ॥ १४३ ॥ परि तो महाघोषु थोरु । गर्जतु असे गंहिरु । जैसा उदेला लोपी दिनकरु । नक्षत्रांतें ॥ १४४ ॥ तैसें तुरबंबाळु भंवते । कौरवदळीं गाजत होते । ते हारपोनि नेणों केउते । गेले तेथ ॥ १४५ ॥ तैसाचि देखे येरे । निनादें अति गहिरे । देवदत्त धनुर्धरें । आस्फुरिला ॥ १४६ ॥ ते दोन्ही शब्द अचाट । मिनले एकवट । तेथ ब्रह्मकटाह शतकूट । हों पाहत असे ॥ १४७ ॥ तंव भीमसेनु विसणैला । जैसा महाकाळु खवळला । तेणें पौण्ड्र आस्फुरिला । महाशंखु ॥ १४८ ॥ तो महाप्रलयजलधरु । जैसा घडघडिला गहिंरु । तंव अनंतविजयो युधिष्ठिरु । आस्फुरित असे ॥ १४९ ॥ नकुळें सुघोषु । सहदेवें मणिपुष्पकु । जेणें नादें अंतकु । गजबजला ठाके ॥ १५० ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यिकश्चापराजितः ॥ १७ ॥ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते । सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥ स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् । नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

तेथ भूपति होते अनेक । द्रुपद द्रौपदेयादिक । हा काशीपति देख । महाबाहु ॥ १५१ ॥ तेथ अर्जुनाचा सुतु । सात्यिक अपराजितु । धृष्टद्युम्नु नृपनाथु । शिखंडी हन ॥ १५२ ॥ विराटादि नृपवर । जे सैनिक मुख्य वीर । तिहीं नानाशंख निरंतर । आस्फुरिले ॥ १५३ ॥ तेणें महाघोषनिर्घातें । शेष कूर्म अवचितें । गजबजोनि भूभारातें । सांड्रं पाहती ॥ १५४ ॥ तेथ तीन्ही लोक डळमळित । मेरु मांदार आंदोळित । समुद्रजळ उसळत । कैलासवेरी ॥ १५५ ॥ पृथ्वीतळ उलथों पहात । आकाश असे आसुडत । तेथ सडा होत । नक्षत्रांचा ॥ १५६ ॥ सृष्टी गेली रे गेली । देवां मोकळवादी जाहली । ऐशी एक टाळी पिटली । सत्यलोकीं ॥ १५७ ॥

दिहाचि दिन थोकला । जैसा प्रलयकाळ मांडला ।
तैसा हाहाकारु जाहला । तिन्हीं लोकीं ॥ १५८ ॥
तें देखोनि आदिपुरुषु विस्मितु । म्हणे झणें होय पां अंतु ।
मग लोपिला अद्भुतु । संभ्रमु तो ॥ १५९ ॥
म्हणौनि विश्व सांवरलें । एईभवीं युगांत होतें वोडवलें ।
जैं महाशंख आस्फुरिले । कृष्णादिकीं ॥ १६० ॥
तो घोष तरी उपसंहरला । परि पडिसाद होता राहिला ।
तेणें दळभार विध्वंसिला । कौरवांचा ॥ १६१ ॥
जैसा गजघटाआंतु । सिंह लीला विदारितु ।
तैसा हृदयातें भेदितु । कौरवांचिया ॥ १६२ ॥
तो गाजत जंव आइकती । तंव उभेचि हिये घालिती ।
एकमेकांतें म्हणती । सावध रे सावध ॥ १६३ ॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$>

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥

तेथ बळें प्रौढीपुरतें । महारथी वीर होते ।
तिहीं पुनरिप दळातें । आविरलें ॥ १६४ ॥
मग सिरसेपणें उठावले । दुणवटोनि उचलले ।
तया दंडीं क्षोभलें । लोकत्रय ॥ १६५ ॥
तेथ बाणवरी धर्नुधर । वर्षताती निरंतर ।
जैसे प्रळयांत जलधर । अनिवार कां ॥ १६६ ॥
ते देखलिया अर्जुनें । संतोष घेऊनि मनें ।
मग संभ्रमें दिठी सेने । घालीतसे ॥ १६७ ॥

तंव संग्रामीं सज्ज जाहले । सकळ कौरव देखिले । तंव लीलाधनुष्य उचललें । पंडुकुमरें ॥ १६८ ॥

हषीकेशं तदा वाक्यिमदमाह महीपते । अर्जुन उवाच । सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥ यावदेतान्निरिक्षेऽहं योद्धकामानवस्थितान् । कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥ योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

ते वेळीं अर्जुन म्हणतसे देवा । आतां झडकरी रथु पेलावा ।
नेऊनि मध्यें घालावा । दोहीं दळां ॥ १६९ ॥
जंव मी नावेक । हे सकळ वीर सैनिक ।
न्याहाळीन अशेख । झुंजते ते ॥ १७० ॥
येथ आले असती आघवें । परी कवणेंसीं म्यां झुंजावें ।
हे रणीं लागे पहावें । म्हणौनियां ॥ १७१ ॥
बहुतकरूनि कौरव । हे आतुर दुःस्वभाव ।
वांटिवेवीण हांव । बांधिती झुंजीं ॥ १७२ ॥
झुंजाची आवडी धरिती । परी संग्रामीं धीर नव्हती ।
हें सांगोनि रायाप्रती । काय संजयो म्हणे ॥ १७३ ॥

सञ्जय उवाच । एवमुक्तो हषीकेशो गुडाकेशेन भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् । उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥ तत्रापश्यितस्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् । आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरिप । तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥ कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदमब्रवीत् ।

आइका अर्जुन इतुकें बोलिला । तंव श्रीकृष्णें रथु पेलिला । दोही सैन्यांमाजीं केला । उभा तेणें ॥ ७४ ॥ जेथ भीष्मद्रोणादिक । जवळिकेचि सन्मुख । पृथिवीपति आणिक । बहुत आहाती ॥ ७५ ॥ तेथ स्थिर करूनियां रथु । अर्जुन असे पाहातु । तो दळभार समस्तु । संभ्रमेंसीं ॥ ७६ ॥ मग देवा म्हणे देख देख । हे गुरुगोत्र अशेख । तंव कृष्णमनीं नावेक । विस्मो जाहला ॥ ७७ ॥ तो आपणयां आपण म्हणे । एथ कायी कवण जाणे । हें मनीं धरलें येणें । परि कांहीं आश्चर्य असे ॥ ७८ ऐसी पुढील से घेतु । तो सहजें जाणें हृदयस्थु । परि उगा असे निवांतु । तिये वेळीं ॥ १७९ ॥ तंव तेथ पार्थु सकळ । पितृ पितामह केवळ । गुरु बंधु मातुळ । देखता जाहला ॥ १८० ॥ इष्ट मित्र आपुले । कुमरजन देखिले । हे सकळ असती आले । तयांमाजी ॥ १८१ ॥

सुहज्जन सासरे । आणीकही सखे सोइरे । कुमर पौत्र धर्नुधरें । देखिले तेथ ॥ १८२ ॥ जयां उपकार होते केले । कीं आपदीं जे रक्षिले । हे असो वडील धाकुले । आदिकरूनि ॥ १८३ ॥ ऐसें गोत्रचि दोहीं दळीं। उदित जालें असे कळीं। हे अर्जुनें तिये वेळीं । अवलोकिलें ॥ १८४ ॥ तेथ मनीं गजबज जाहली । आणि आपैसी कृपा आली । तेणें अपमानें निघाली । वीरवृत्ति ॥ १८५ ॥ जिया उत्तम कुळींचिया होती । आणि गुणलावण्य आथी । तिया आणिकीतें न साहती । सुतेजपणें ॥ १८६ ॥ नविये आवडीचेनि भरें। कामुक निजवनिता विसरे। मग पाडेंवीण अनुसरे । भ्रमला जैसा ॥ १८७ ॥ कीं तपोबळें ऋब्ही। पातिलया भ्रंशे बुद्धी। मग तया विरक्तता सिद्धी । आठवेना ॥ १८८ ॥ तैसें अर्जुना तेथ जाहलें । असतें पुरुषत्व गेलें । जे अंत:करण दिधलें । कारुण्यासी ॥ १८९ ॥ देखा मंत्रज्ञु बरळु जाय । मग तेथ कां जैसा संचारु होय । तैसा तो धनुर्धर महामोहें । आकळिला ॥ १९० ॥ म्हणौनि असतां धीरु गेला । हृदया द्रावो आला । जैसा चंद्रकळीं शिवतला । सोमकांतु ॥ १९१ ॥ तयापरी पार्थु । अतिस्नेहें मोहितु । मग सखेद असे बोलतु । श्रीअच्युतेसीं ॥ १९२ ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमम् स्वजनं कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम् ॥ २८ ॥ सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यिति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥ गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते । न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

तो म्हणे अवधारी देवा । म्यां पाहिला हा मेळावा । तंव गोत्र वर्गु आघवा । देखिला एथ ॥ १९३ ॥ हें संग्रामीं उदित । जहाले असती कीर समस्त । पण आपणपेयां उचित । केवीं होय ॥ १९४ ॥ येणें नांवेचि नेणों कायी । मज आपणपें सर्वथा नाहीं । मन बुद्धि ठायीं । स्थिर नोहे ॥ १९५ ॥ देखे देह कांपत । तोंड असे कोरडें होत । विकळता उपजत । गात्रांसीही ॥ १९६ ॥ सर्वांगा कांटाळा आला । अति संतापु उपनला । तेथ बेंबळ हातु गेला । गांडिवाचा ॥ १९७ ॥ तें न धरतचि निष्टलें । परि नेणेंचि हातोनि पडिलें । ऐसें हृदय असे व्यापिलें । मोहें येणें ॥ १९८ ॥ जें वज्रापासोनि कठिण । दुर्धर अतिदारुण । तयाहून असाधारण । हें स्नेह नवल ॥ १९९ ॥ जेणें संग्रामीं हरु जितिला । निवातकवचांचा ठावो फेडिला । तो अर्जुन मोहें कवळिला । क्षणामाजीं ॥ २०० ॥ जैसा भ्रमर भेदी कोडें। भलतैसें काष्ठ कोरडें।

पिर कळिकेमाजी सांपडे । कोंवळिये ॥ २०१ ॥
तेथ उत्तीर्ण होईल प्राणें । पिर तें कमळदळ चिरूं नेणें ।
तैसें कठिण कोवळेपणें । स्नेह देखा ॥ २०२ ॥
हे आदिपुरुषाची माया । ब्रह्मेयाही नयेचि आया ।
म्हणौनि भुलविला ऐकें राया । संजयो म्हणे ॥ २०३ ॥
अवधारी मग तो अर्जुनु । देखोनि सकळ स्वजनु ।
विसरला अभिमानु । संग्रामींचा ॥ २०४ ॥
केसी नेणों सदयता । उपनली तेथें चित्ता ।
मग म्हणे कृष्णा आतां । निसजे एथ ॥ २०५ ॥
माझें अतिशय मन व्याकुळ । होतसे वाचा बरळ ।
जे वधावे हे सकळ । येणें नांवें ॥ २०६ ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

या कौरवां जरी वधावें । तरी युधिष्ठीरादिकां कां न वधावें ।
हे येरयेर आघवे । गोत्रज आमुचे ॥ २०७ ॥
म्हणोनि जळो हें झुंज । प्रत्यया न ये मज ।
एणें काय काज । महापापें ॥ २०८ ॥
देवा बहुतापरी पाहतां । एथ वोखटे होईल झुंजतां ।
वर कांहीं चुकवितां । लाभु आथी ॥ २०९ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥ येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च । त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥ आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः । मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

तया विजयवृत्ती कांहीं । मज सर्वथा काज नाहीं । एथ राज्य तरी कायी । हे पाहुनियां ॥ २१० ॥ या सकळांतें वधावें । मग हे भोग भोगावे । ते जळोत आघवे । पार्थु म्हणे ॥ २११ ॥ तेणें सुखेंविण होईल । तें भलतैसें साहिजेल । वरी जीवितही वेंचिजेल । याचिलागीं ॥ २१२ ॥ परी यांसी घातु कीजे । मग आपण राज्यसुख भोगिजे । हें स्वप्नींही मन माझें । करूं न शके ॥ २१३ ॥ तरी आम्हीं कां जन्मावें । कवणलागीं जियावें । जरी वडिलां यां चिंतावें । विरुद्ध मनें ॥ २१४ ॥ पुत्रातें इच्छी कुळ । तयाचें कायि हेंचि फळ । जे निर्दळिजे केवळ । गोत्र आपुलें ॥ २१५ ॥ हें मनींचि केविं धरिजे । आपण वज्राचेया होईजे । वरी घडे तरी कीजे । भलें इयां ॥ २१६ ॥ आम्हीं जें जें जोडावें । तें समस्तीं इहीं भोगावें । हें जीवितही उपकारावें । काजीं यांच्या ॥ २१७ ॥ आम्ही दिगंतीचे भूपाळ । विभांडूनि सकळ । मग संतोषविजे कुळ । आपुलें जें ॥ २१८ ॥ तेचि हे समस्त । परी कैसें कर्म विपरीत । जे जाहले असती उद्यत । झुंजावया ॥ २१९ ॥

अंतौरिया कुमरें । सांडोनियां भांडारें । शस्त्राग्रीं जिव्हारें । आरोपुनी ॥ २२० ॥ ऐसियांतें कैसेनि मारूं । कवणावरी शस्त्र धरूं । निजहृदया करूं । घातु केवीं ॥ २२१ ॥ हें नेणसी तूं कवण । परी पैल भीष्म द्रोण । जयांचे उपकार असाधारण । आम्हां बहुत ॥ २२२ ॥ एथ शालक सासरे मातुळ । आणि बंधु कीं हे सकळ । पुत्र नातू केवळ । इष्टही असती ॥ २२३ ॥ अवधारी अति जवळिकेचे । हे सकळही सोयरे आमुचे । म्हणौनि दोष आथी वाचे । बोलितांचि ॥ २२४ ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

हे वरी भलतें करितु । आतांचि येथें मारितु । परि आपण मनें घातु । न चिंतावा ॥ २२५ ॥ त्रैलोक्यींचें अनकळित । जरी राज्य होईल प्राप्त । तरी हें अनुचित । नाचरें मी ॥ २२६ ॥ जरी आजि एथ ऐसें कीजे । तरी कवणाच्या मनीं उरिजे सांगे मुख केवीं पाहिजे । तुझें कृष्णा ॥ २२७ ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥ जरी वधु करोनि गोत्रजांचा । तरी वसौटा होऊनि दोषांचा ।

मज जोडिलासि तुं हातींचा । दूरी होसी ॥ २२८ ॥

कुळहरणीं पातकें । तिये आंगीं जडती अशेखें ।

तये वेळीं तुं कवणें कें । देखावासी ॥ २२९ ॥

जैसा उद्यानामाजीं अनळु । संचारला देखोनि प्रबळु ।

मग क्षणभरी कोकिळु । स्थिरु नोहे ॥ २३० ॥

का सकर्दम सरोवरु । अवलोकूनि चकोरु ।

न सेवितु अव्हेरु । करूनि निघे ॥ २३१ ॥

तयापरी तुं देवा । मज झकवूं न येसीं मावा ।

जरी पुण्याचा वोलावा । नाशिजैल ॥ २३२ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् । स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

म्हणोनि मी हें न करीं । इये संग्रामीं शस्त्र न धरीं । हें किडाळ बहुतीं परी । दिसतसे ॥ २३३ ॥ तुजसीं अंतराय होईल । मग सांगे आमुचें काय उरेल । तेणें दुःखें हियें फुटेल । तुजवीण कृष्णा ॥ २३४ ॥ म्हणौनि कौरव हे विधजती । मग आम्ही भोग भोगिजती । हे असो मात अघडती । अर्जुन म्हणे ॥ २३५ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् । कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

हे अभिमानमदें भुललें । जरी पां संग्रामा आले । तर्ही आम्हीं हित आपुलें। जाणावें लागे॥ २३६॥ हें ऐसें कैसें करावें । जे आपुले आपण मारावे । जाणत जाणतांचि सेवावें । काळकूट ॥ २३७ ॥ हां जी मार्गीं चालतां । पुढां सिंहु जाहला आवचिता । तो तंव चुकवितां । लाभु आथी ॥ २३८ ॥ असता प्रकाशु सांडावा । मग अंधकूप आश्रावा । तरी तेथ कवणु देवा । लाभु सांगे ॥ २३९ ॥ कां समोर अग्नि देखोनी । जरी न विचजे वोसंडोनी । तरी क्षणा एका कवळूनी । जाळूं सके ॥ २४० ॥ तैसे दोष हे मूर्त । अंगी वाजों असती पहात । हें जाणतांही केवीं एथ । प्रवर्तावें ॥ २४१ ॥ ऐसें पार्थु तिये अवसरीं । म्हणे देवा अवधारीं । या कल्मषाची थोरी । सांगेन तुज ॥ २४२ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥ जैसें कष्ठें काष्ठ मथिजे । तेथ वन्हि एक उपजे । तेणें काष्ठजात जाळिजे । प्रज्वळलेनि ॥ २४३ ॥ तैसा गोत्रींचीं परस्परें । जरी वधु घडे मत्सरें । तरी तेणें महादोषें घोरें । कुळचि नाशे ॥ २४४ ॥ म्हणौनि येणें पापें । वंशजधर्मु लोपे । मग अधर्मुचि आरोपे । कुळामाजीं ॥ २४५ ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः । स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥

एथ सारासार विचारावें । कवणें काय आचारावें ।
आणि विधिनिषेध आघवे । पारुषती ॥ २४६ ॥
असता दीपु दविडजे । मग अंधकारीं राहाटिजे ।
तरी उजूचि कां अडळिजे । जयापरी ॥ २४७ ॥
तैसा कुळीं कुळक्षयो होय । तये वेळीं तो आद्यधर्मु जाय ।
मग आन कांहीं आहे । पापावांचुनी ॥ २४८ ॥
जैं यमनियम ठाकती । तेथ इंद्रिये सैरा राहाटती ।
म्हणौनि व्यभिचार घडती । कुळस्त्रियांसी ॥ २४९ ॥
उत्तम अधमीं संचरती । ऐसे वर्णावर्ण मिसळती ।
तेथ समूळ उपडती । जातिधर्म ॥ २५० ॥
जैसी चोहटाचिये बळी । पाविजे सैरा काउळीं ।
तैसीं महापापें कुळीं । संचरती ॥ २५१ ॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च । पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तिपण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

मग कुळा तया अशेखा । आणि कुळघातकां । येरयेरां नरका । जाणें आथी ॥ २५२ ॥ देखें वंशवृद्धि समस्त । यापरी होय पतित । मग वोवांडिती स्वर्गस्थ । पूर्वपुरुष ॥ २५३ ॥ जेथ नित्यादि क्रिया ठाके । आणि नैमित्तिक क्रिया पारुखे । तेथ कवणा तिळोदकें । कवण अर्पी ॥ २५४ ॥ तरी पितर काय करिती । कैसेनि स्वर्गीं वसती । म्हणौनि तेही येती । कुळापासीं ॥ २५५ ॥ जैसा नखाग्रीं व्याळु लागे । तो शिखांत व्यापी वेगें । तेवीं आब्रह्म कुळ अवघें । आप्लविजे ॥ २५६ ॥

(2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) <

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः । उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥ उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन । नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥ अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् । यद्राहज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

देवा अवधारी आणीक एक । एथ घडे महापातक । जे संगदोषें हा लौकिक । भ्रंशु पावे ॥ २५७ ॥ जैसा घरीं आपुला । वानिवसें अग्नि लागला । तो आणिकांहीं प्रज्विळला । जाळूनि घाली ॥ २५८ ॥ तैसिया तया कुळसंगती । जे जे लोक वर्तती । तेही बाधा पावती । निमित्तें येणें ॥ २५९ ॥ तैसें नाना दोषें सकळ । अर्जुन म्हणे तें कुळ । मग महाघोर केवळ । निरय भोगी ॥ २६० ॥ पडिलिया तिये ठायीं । मग कल्पांतींही उकलु नाहीं ।

येसणें पतन कुळक्षयीं । अर्जुन म्हणे ॥ २६१ ॥ देवा हें विविध कानीं ऐकिजे । परी अझुनिवरी त्रासु नुपजे । हृदय वज्राचें हें काय कीजे । अवधारीं पां ॥ २६२ ॥ अपेक्षिजे राज्यसुख । जयालागीं तें तंव क्षणिक । ऐसे जाणतांही दोख । अव्हेरू ना ॥ २६३ ॥ जे हे विडल सकळ आपुले । वधावया दिठी सूदले । सांग पां काय थेंकुलें । घडलें आम्हां ॥ २६४ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥ आतां यावरी जें जियावें । तयापासूनि हें बरवें । जे शस्त्र सांडुनि साहावे । बाण यांचे ॥ २६५ ॥ तयावरी होय जितुकें । तें मरणही वरी निकें । परी येणें कल्मषें । चाड नाहीं ॥ २६६ ॥ ऐसें देखून सकळ । अर्जुनें आपुलें कुळ । मग म्हणे राज्य तें केवळ । निरयभोगु ॥ २६७ ॥

सञ्जय उवाच।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥ ॐ तत्सिदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

ऐसे तिये अवसरी । अर्जुन बोलिला समरीं । संजयो म्हणे अवधारीं । धृतराष्ट्रातें ॥ २६८ ॥ मग अत्यंत उद्देगला । न धरत गहींवरु आला । तेथ उडी घातली खालां । रथौनियां ॥ २६९ ॥ जैसा राजकुमरु पदच्युतु । सर्वथा होय उपहत् । कां रिव राहुग्रस्तु । प्रभाहीनु ॥ २७० ॥ नातरी महासिद्धिसंभ्रमें । जिंतिला तापसु भ्रमें । मग आकळूनि कामें । दीनु कीजे ॥ २७१ ॥ तैसा तो धर्नुधरु । अत्यंत दुःखें जर्जरु । दिसे जेथ रहंवरु । त्यजिला तेणें ॥ २७२ ॥ मग धनुष्य बाण सांडिले । न धरत अश्रुपात आले । ऐसें ऐक राया वर्तलें । संजयो म्हणे ॥ २७३ ॥ आतां यापरी तो वैकुंठनाथु । देखोनि सखेद पार्थु । कवणेपरी परमार्थु । निरूपील ॥ २७४ ॥ ते सविस्तर पुढारी कथा । अति सकौतुक ऐकतां । ज्ञानदेव म्हणे आतां । निवृत्तिदासु ॥ २७५ ॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां प्रथमोऽध्यायः॥

<</p>

॥ रामकृष्णहरि ॥

सेवाभावी संतचरणरज

बाळकृष्ण प्रकाश कदम

जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

(इतर PDF ग्रंथासाठी संपर्क - ९७६५६५३८०५)